समकालीन कहानियों में विविध विमर्श

संपादक
डॉ. मोनिका देवी
डॉ. सरिता देवी

विद्या प्रकाशन
सी, 449, गुजैनी, कानपुर - 22

Scanned by CamScanner

ISBN : 978-93-86248-43-5

पुस्तक	:	समकालीन कहानियों में विविध विमर्श
संपादक	:	डॉ. मोनिका देवी, डॉ. सरिता देवी
प्रकाशक	:	**विद्या प्रकाशन** सी-449, गुजैनी, कानपुर-22 दूरभाष : (0512) 2285003 मो० : 09415133173 Website: www.vidyaprakashankanpur.com E-mail : vidyaprakashan.knp@gmail.com
संस्करण	:	प्रथम 2018
शब्द सज्जा	:	शिखा ग्राफिक्स, जूही, कानपुर
मुद्रक	:	श्री पूजा आफसेट, नौबस्ता, कानपुर
मूल्य	:	₹ 400/-

Samkaleen Kahaniyon Men Vividh Vimarsh

Edited By : Dr. Monika Devi & Dr. Sarita Devi

Price : Four Hundred Only

Scanned by CamScanner

10. अलका सरावगी की कहानियों में नारी अस्मिता 90–94
– डॉ. सुरभि जैन
11. पारितोष चक्रवर्ती : अंतिम दशक की कहानी का सफर 95–98
–डॉ विकास कुमार
12. समकालीन हिंदी साहित्य के स्त्री–विमर्श का जरूरी हिस्सा विधवा विमर्श ''कोठारी'' के बहाने 99–117
–अभिषेक चंदन
13. राजी सेठ की कहानियों में अभिव्यक्त मानवीय मूल्य 118–122
– वर्षा तिवारी
14. समय और समाज के जिरह करती रोज केरकेट्टा की कहानियाँ 123–131
– अनीश कुमार
15. इक्कीसवी सदी के कहानियों में नारी विमर्श 132–138
– प्रो. लता सुमन्त
16. नयी सदी के दलित प्रश्न: श्रेष्ठ दलित कहानियों के संदर्भ में 139–146
–चंचल सिंह
17. समकालीन कहानी में स्त्री विमर्श 147–151
–मेहरकर ज्ञानेश्वर
18. 'मुस्कुराती औरते' और स्त्री अस्मिता 152–156
–राकेश डबरिया
19. अमृता प्रीतम : ''सहस्र कहानियाँ'' एक अध्ययन 157–160
– नेक परवीण

Scanned by CamScanner

समय और समाज में जिरह करती रोज केरकेट्टा की कहानियाँ

अनीश कुमार

समकालीन समय में भारतीय भाषाओं में जो साहित्य लिखा जा रहा है, उसके केन्द्र में मानव है। आज साहित्य की प्रत्येक विधा में वैश्वीकरण के कारण टूटते मानव का भयावह अक्स स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हो रहा है। जो लोग सदियों से हाशिये पर उपेक्षित सा जीवन जी रहे थे, जो स्त्री सदियों से उपेक्षित सी अपने जीवन के भूत, वर्तमान और भविष्य से चिंतित थी अब ये साहित्य के केन्द्र में अपना अस्तित्व निर्माण कर चुके हैं। अतः यूँ कहें कि साहित्य में अब दलित, स्त्री, आदिवासी की बात अनुभूति और आत्मविश्वास के साथ परिवर्तन के लिए की जा रही है। सत्ता ने आदिवासियों की आवाज को हमेशा दबाने का काम किया है। ऐसा करना दरअसल उसकी मजबूरी बन गई है। सत्ता धर्म की बैसाखी का सहारा लिए बिना नहीं चल सकती। धर्म सत्ता का शोषण करता है। बदले में वह अपने शास्त्रों और विधानों को दलित जनता पर लागू करने के लिए सत्ता का सहयोग लेती है। इन सभी के बीच दलित आदिवासी पिसे जाते हैं।

जब हम समकालीन कहानी पर बात करते हैं तो उसका कथा–पटल बेहद विस्तृत मिलता है। उसमें स्त्री, दलित, आदिवासी और अन्य अस्मिताओं को स्थान मिल रहा है। समकालीन परिवेश ने कहानी के तथ्य, कथ्य और रूप संरचना को एक तरफ प्रतिमान तो दिया है, साथ ही समकालीन कहानी में काल या परिवेश का दबाव व अनेक आयाम उभरकर सामने हैं जिससे समकालीन कहानी अपने समय के यथार्थ का प्रतिरूप बनकर सामने आती हैं। समकालीन कहानी की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि वह उपलब्ध यथार्थ से असहमति जताती है, परन्तु अपेक्षित यथार्थ के लिए प्रयत्नशील होकर

Scanned by CamScanner

सामाजिकता के दायित्व का निर्वाह करती है। इसमें कोई शक नहीं कि समकालीन कहानी में यथार्थ की पड़ताल की है। इस संदर्भ में कमलेश्वर कहते हैं कि, "बड़े पैमाने पर चल रही यथार्थ की लड़ाई में शामिल है कहानियाँ.... ये मुजस्सीम आदमी की बदली हुई धारणाओं, उसके प्रश्नों और चिंताओं की लिखित तहरीर ही नहीं बल्कि समय में लिखे गये उसके फैसलों की यथार्थ प्रतिलिपियाँ भी है ये कहानियाँ आम आदमी के समय संदर्भ में जन्म लेने वाले जलते प्रश्नों के यथार्थ मूलक दुविधा रहित कदम है.... इस प्रकार ये कहानियाँ आम आदमी की लड़ाई के कदम है जो विभिन्न मोर्चों पर व्यवस्था के खिलाफ लड़ रहा है।"[1]

समकालीन साहित्य में आदिवासी स्त्री, दलित और अल्पसंख्यक समाज की स्थिति पर पुनर्विचार होने लगा है। साहित्य और समाज में ये तबके लम्बे समय तक हाशिए पर रहे। संवैधानिक प्रावधानों के कारण इन वंचित वर्गों के लोगों में अपने संघर्ष के खिलाफ बड़े स्तर पर संघर्ष करने की चेतना विकसित हुई। जिसे उत्तर आधुनिक शब्दावली में विमर्श के नाम से जाना जाता है। हिन्दी साहित्य भी इस बदलते हुए परिवेश से अछूता नहीं है, स्त्री दलित और आदिवासी लेखन इसका प्रमाण है। आदिवासी लेखन हिंदी के अस्मितावादी विमर्शों में सबसे नवीन है। वर्षों से आदिवासी साहित्य को हाशिए पर रखा गया लेकिन आज आदिवासी साहित्य नए रूप में उभर सामने आ रहा है। भारतीय साहित्य में आदिवासी की छवि को गलत रूप में पेश करने की कोशिश की गई है। इस दृष्टि से समकालीन हिन्दी कहानियों में जीवन स्थितियों, संघर्षों उनकी आकांक्षाओं और उनके सपनों को कहानियों में समकालीन कवि अभिव्यक्त कर रहे हैं। इस तरह हिन्दी कहानी की चिन्तन परम्परा में आदिवासी जीवन की उपस्थिति धीरे–धीरे दर्ज होने लगती है।

जब हम आदिवासी स्त्री की बात करते हैं तो हमारे जेहन में उनकी स्वच्छंद, स्वतंत्र, संघर्षशील, आत्मनिर्भर छवि सामने आती है। भारतीय समाज और संस्कृति की तुलना में आदिवासी स्त्रियाँ आरम्भ से ही स्वतंत्र और स्वच्छंद रही हैं। चाहे प्रेम करने की स्वतन्त्रता हो या फिर वर के चयन करने की स्वतन्त्रता हो, आदिवासी स्त्रियाँ आरम्भ से ही आत्मनिर्भर रही है। यही विशेषता है जो आदिवासी स्त्रियों को अन्य स्त्रियों से विशिष्ठ बनाती है। मुख्यधारा का समाज आदिवासी स्त्री को

Scanned by CamScanner

मात्र मनोरंजन और भोग का साधन मानते हैं। उनकी नजर में आदिवासी स्त्री को कोई अस्तित्व नहीं है। उनके अनुसार वह सामाजिक, आर्थिक और शारीरिक रूप से कमजोर और असहाय होती है। उनके भोलेपन और मासूमियत का मुख्यधारा का समाज गलत फायदा उठाकर शोषण करता है।

रोज केरकेट्टा की अधिकांश कहानियाँ यथार्थपरक हैं। इन कहानियों में भारतीय समाज के सामंतवादी चरित्र और आदिवासियों के प्रति उनके व्यवहार को जिस साहस के साथ चित्रित किया गया है, वह आदिवासी साहित्य की बड़ी उपलब्धि है। सच को सच की तरह कहने के लिए जिस साहसिकता की जरूरत पड़ती है, वह साहसिकता रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्पष्ट दिखाई देता है। यथार्थवाद की यह माँग होती है कि समाज में जो कुछ अच्छा या सुन्दर है उसी का नहीं बल्कि जो कुछ विद्रूप वीभत्स और विसंगत है उसका भी यथा तथ्य चित्रण पूरी ईमानदारी के साथ किया जाना चाहिए। यथार्थ पर आधारित होने के कारण आदिवासी साहित्य 'वाह' नहीं बल्कि 'आह' का साहित्य है।

इसमें आदिवासी जीवन का दंश, दर्द और आह सर्वोपरि है क्योंकि यह समाज का सबसे बड़ा कटु और भयानक यथार्थ है। आदिवासी उत्पीड़न और संवेदना के जितने भी पक्ष हो सकते हैं रोज केरकेट्टा की कहानियों में लगभग उन सभी को प्रतिपाद्य बनाया गया है। आदिवासी साहित्य के आलोचक विद्वान डॉ. वीरभारत तलवार मानते हैं कि, "रोज केरकेट्टा की कहानियाँ आदिवासी जीवन को सघनता और सम्पूर्णता के साथ व्यक्त करती हैं। उन्होंने जो जिया है, उसे ही लिखा है। प्रतिरोध का राजनीतिक स्वर इसमें सबसे बड़ी बात है। डॉ. तलवार साहित्य में चल रहे स्त्री विमर्श से इस संग्रह की कहानियों को अलगाते हुए कहते हैं, रोज की कहानियाँ पुरुष के विरोध में नहीं, व्यवस्था के विरोध में खड़ी हैं। यहाँ अलग तरह का नारीवाद है।"[2]

आदिवासी कथाकारों और रोज केरकेट्टा की कहानियों के संदर्भ में साहित्यकार और संस्कृतिकर्मी अश्विनी कुमार पंकज की स्पष्ट मान्यता है कि रोज केरकेट्टा जैसे आदिवासी लेखकों का साहित्य गैर–आदिवासियों द्वारा लिखे साहित्य से नितांत भिन्न भाव–भूमि और सौन्दर्यबोध वाला है। उनकी टिप्पणी है, "आदिवासी लेखन में भिन्न–भिन्न भाषाओं के बावजूद उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि एक–सी है।

Scanned by CamScanner

विषय, कथ्य और प्रस्तुति शैली में जरूर अन्य क्षेत्रीय भाषायी समाजों का प्रभाव पड़ा है लेकिन दृष्टि आदिवासी ही है।''[3] आदिवासी समाज और उनका जीवन संघर्ष है, परम्पराएँ हैं और कहन आदिवासी शब्दावलियों व मुहावरों से लैस है। इस संग्रह की कहानियों में लेखिका ने अभिव्यक्ति की जिस शैली का प्रयोग किया है, उसका एक अलग अंदाज और मजा है। हिंदी में लिखे जाने के बावजूद संग्रह की कहानियों में अलग किस्म की 'आदिवासी हिंदी' है, जिसका भाव और सौन्दर्यबोध मुख्यधारा के हिंदी साहित्य से बिल्कुल अलग है।

बिरवार गमछा और अन्य कहानियाँ रोज केरकेट्टा की समकालीन कहानी संग्रह है। देश की आजादी से पहले और देश की आजादी की बाद तकरीबन सात दशक की पृष्ठभूमि में लिखी गई ये कहानियाँ आदिवासियों की सच्ची तस्वीर पेश करती हैं। 'प्रतिरोध' कहानी में वह आदिवासी महिलाओं खासकर लड़कियों के मानसिक संवेदनाओं को उद्घाटित करती है। स्वतन्त्रता के बाद विज्ञान के आगमन से छोटे गाँवों की आदिवासी लड़कियाँ शहर में दातुन बेचने जाती हैं। वहाँ के स्कूलों और लड़कियों की स्वच्छंदता को देखकर उनके मन में प्रतिरोध की भावना उत्पन्न होती है। 'जिद' कहानी एक युवा आदिवासी शिक्षिका 'कोलेंगे' की कहानी है। तंगहाली के बीच वह उच्च शिक्षा हासिल करती है और समय के साथ संघर्ष करती दिखाई देती है। लेकिन इन सब के बीच उसे अपना 'आदिवासी' होना परेशान करता है और वह नियुक्ति पत्र से वंचित रह जाती है। इसी तरह 'घाना लोहार का' 'फ्राक' 'फिक्स्ड डिपॉजिट' 'जिद' 'बड़ा आदमी' 'माँ' से महुआ गिरे सगर राति' 'मैग्नोलिया पाइंट' 'रामोणी' 'बिरुवार गमछा' कहानियाँ भी सामाजिक यथार्थ को दर्शाती हैं।

रोज केरकेट्टा ने जिन हालातों को अपने करीब से देखा है, उन्हीं को अपनी कहानियों का विषयवस्तु बनाया है। विकास की अंधी दौड़ में नैतिकता को ताक पर रखकर आगे बढ़ने की होड़ सी मच गई है। विकास परियोजनाओं के नाम मनुष्य के जीवन में अनगिनत बदलाव आए। कहीं ये बदलाव सार्थक हुए तो कहीं विनाश के कारण बने। आदिवासियों की अस्मिता व अस्तित्व तथा महिलाओं के जीवन पर इसका बुरा असर पड़ा। रोज केरकेट्टा ने इन सभी बदलावों को करीब से देखा है। उनकी सभी कहानियाँ इन तमाम तस्वीर को बयाँ करती हैं। 'मैग्नोलिया पॉइट' कहानी में आजादी के पहले के आदिवासी

Scanned by CamScanner

परिवेश की कहानी है। यह गोरे साहब (गवर्नर) की बेटी 'मैग्नोलिया' और बागान में फूलों को सँवारने वाले माली 'पंचु' की कहानी है। समकालीन कहानी में समकालीन समाज की जिन्दगी तथा सोच में आये परिवर्तनों का जितना यथार्थ दिखलाई पड़ता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कारण, आज की कहानी में कला भी है और समाज की समझ भी जिन्दगी के यथार्थ से जुड़ी सर्जनात्मक भाषा भी है और उसे अन्य वृहत्तर सामाजिक समुदायों के साथ जोड़कर सार्वजनिक चरित्रों के निर्माण की क्षमता भी। यह प्रवृत्ति रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्पष्ट दिखाई देती है। आदिवासी समाज का सवाल सीधे तौर पर ऐतिहासिक रूप से शोषण एवं उत्पीड़न की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है जिसे केरकेट्टा ने गहराई के साथ उठाया है।

आदिवासी स्त्री लेखकों की रचनाएँ न सिर्फ भारतीय समाज के अनदेखे बहुभाषायी और बहुसांस्कृतिक संसार को दर्ज करती हैं बल्कि पूर्वग्रहों और गैरबराबरी से मुक्त एक स्वस्थ लोकतांत्रिक समाज की पुनर्रचना के लिए उत्प्रेरित भी करती है। आदिवासियों का सच एक अलग सांस्कृतिक विश्व है जहाँ आदिवासी स्त्रियाँ अपनी विशिष्ट स्त्रीगत समस्याओं पर बात करते हुए भी गैर–आदिवासी स्त्री–लेखन की तरह 'देह' की मुक्ति या 'पुरुष–सत्ता'के सवालों को नहीं उठातीं, बल्कि अपनी सामूहिक आदिवासी चेतना के कारण वे सीधे–सीधे उस विश्व से टकराती हैं जो श्रम और सृष्टि की अवमानना करता है, जो इंसानी समाज का नस्लों, धर्मों, जातियों के आधार पर रंग–भाषा, और लिंग के आधार पर भेदभाव करता है, उसका संकुचन व संक्षेपण करता है।

"रोज केरकेट्टा सोशल एक्टिविस्ट हैं। झारखंड अलग राज्य के आन्दोलन की एक अग्रणी नेता। इसी सामाजिक सरोकार ने उन्हें निरा कहानीकार बनने से रोका है। इस संग्रह की छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से वे लगभग उन तमाम सवालों को संबोधित–एड्रेस करती हैं, जो आदिवासी समाज के जीवन और अस्तित्व का प्रश्न बना हुआ है। विस्थापन की पीड़ा, पलायन की त्रासदी औद्योगीकरण से तबाह होता आदिवासी समाज, गैर–आदिवासी समाज के बीच जगह बनाने के लिए एक आदिवासी युवती की जद्दोजेहद, अपसंस्कृति का बढ़ता प्रभाव और पुरखों की अपनी विरासत से जुड़े रहने की अदम्य इच्छा, ये सभी रोज की कहानियों की विषयवस्तु हैं। लेकिन उसी तरह कथानक में छुपा

Scanned by CamScanner

हुआ जैसे फूलों में सुगंध होती है। अपनी बात कहने के लिए किसी एक स्थान पर भी रोज उपदेशक नहीं बनतीं और न आदर्शों का बखान करती हैं।''[4]

रोज केरकेट्टा अपनी कहानियों में बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव तथा भूमंडलीकरण के पहले व आगमन के प्रभावों को रेखांकित करती हैं। 'फिक्स्ड डिपॉजिट' इसी तरह की कहानी है। यह उन तमाम परिवारों के पलायन की कहानी है जो खुद की जिन्दगी सँवारने के लिए शहर को चले जाते हैं। शहर में जाने से उनका गाँव से रिश्ता टूट जाता है। यह कहानी औद्योगिकीकरण के निर्मम स्वरूप, विस्थापन की पीड़ा की कहानी है। इसके साथ इस बात की चिंता भी कि आज का युवा किस प्रकार अपसंस्कृति का हिस्सा बनता जा रहा है। धीरे–धीरे पूरी तरह बाजारवाद के जद में आ जाते हैं। अपनी संस्कृति और सभ्यता को भूलने लगते हैं। लेखिका को इसकी चिंता भी है। जहाँ वह खुद पात्रों के माध्यम से सामने आकर संस्कृति को बचाने की गुहार लगाती हैं।

डॉ. सुधीर पचौरी ने बाजारवाद के इस उत्तर आधुनिक दौर को अत्यन्त बेबाक पूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। उन्होंने उत्तर आधुनिकता की संकल्पना के अति विस्तार को साहित्य के परिप्रेक्ष्य में रेखांकित करते हुए कहा है कि, ''भारत में शुरू होनेवाला अस्मिता विमर्श, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, भाषा संचेतना आदि की स्वीकार्यता उत्तर आधुनिकता की स्वीकार्यता है। सच है उत्तर आधुनिकता के इस दौर में साहित्य में, समाज में या फिर फिल्मों में, व्यक्तिगत अभिव्यक्ति को स्वतन्त्रता के मनमाने अवसर मनमाने ढंग से तलाशे गए हैं। समाज में भी एक–दूसरे से अधिक आधुनिक होने की दौड़ ने हमारे जीवन मूल्यों को दरकने की स्थिति में पहुँचा दिया है। मूल्यहीनता ने भी इंसानी वजूद को बौना साबित कर दिया है। अब इंसान इस ग्रह का नियंता और ईश्वर को सबसे खूबसूरत रचना नहीं बल्कि उपभोक्ता है। यहाँ सबके लिए सब कुछ है, लेकिन फिर भी किसी को कुछ हासिल नहीं होता। उत्तर आधुनिक के इस कालखंड को सकारात्मक पहचान देने के लिए स्वस्थ और सार्थक बहस को परिणाम तक पहुँचाना ही होगा।''[5]

''सात दशकों की पृष्ठभूमि में लिखी ये कहानियाँ आदिवासी समाज की सच्ची तस्वीर पेश करती हैं। आजादी के पहले जिस तरह

Scanned by CamScanner

के हालात थे, परम्पराएँ थीं, आदिवासी जीवन दर्शन था, जल जंगल और जमीन से जुड़े रहने का जज्बा था, अपनापन था– किस तरह उनमें तब्दीलियाँ आईं, उन पर बाहरी माहौल, परम्पराओं, संस्कृति के हमले हुए– इन तमाम हकीकतों की पृष्ठभूमि में इन कहानियों को बहुत ही सशक्त ढंग से उभारा गया है।.... विकास परियोजनाओं का दौर चला। उन परियोजनाओं में उनके खेत–खलिहान, गाँव–घर डूबते चले गए, और तब विस्थापन, पलायन, शोषण का एक अंतहीन सिलसिला शुरू हो गया। आदिवासी समाज अब खुद को कहाँ पाता है– उनकी अस्मिता, उनका अस्तित्व कहाँ रचता–बसता है– रोज की कहानियों में यही सब है और आदिवासी समाज की नई दिशाएँ भी, जो हमें सोचने पर मजबूर करती हैं।''[6] 'माँ' कहानी लिखकर लेखिका एक आदर्श 'माँ' का भी फर्ज निभाती हैं। इस कहानी की पात्र 'फूलमती' एक नवजात को बड़े मुश्किल से बचाती है। इनकी कहानियों में लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं है।

वास्तव में समकालीन हिंदी कहानी ने आदिवासी विमर्श को एक नई दिशा प्रदान की है। आदिवासी साहित्य का परिवेश बदलाव के अनेक परिदृश्यों को अपने भीतर समेटे हुए है। आदिवासी विमर्श के माध्यम से चिन्तन को एक नव्य आयाम मिल रहा है। रोज केरकेट्टा की कहानियों ने इन आयामों को नई दिशा दी है। आज के इस उत्तर आधुनिक दौर में साहित्य अपने पूरे सामर्थ्य के साथ उपस्थित रहा है। यह आदिवासी हिन्दी साहित्य के सशक्त व समर्थ रूप को हमारे सामने रखते हैं। लेखिका ने समाज की हर बदलती तस्वीर को अपने चिन्तन में शामिल कर उसे अपनी आवाज व भाषा का सामर्थ्य देकर पाठकों के सामने रखा है। जीवन का लम्बा अनुभव उनकी कहानियों के माध्यम से दिखाई देता है। यह समय विमर्शों का समय है। इस संदर्भ में अस्मितावादी आलोचक चौथीराम यादव अपनी पुस्तक 'उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज' की भूमिका में लिखते हैं कि ''उत्तरशती विमर्शों की शताब्दी है।

आज के बदलते हुए परिवेश में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श का चर्चा के केन्द्र में आना तथा सभी स्त्री, दलित और आदिवासी समुदाय का समाज के केन्द्र में आना हमारे सामाजिक–आर्थिक विकास और दलित स्त्री नवजागरण की चेतना का परिणाम है, जो हजारों सालों से गुमशुदा अस्मिताओं का आन्दोलन

Scanned by CamScanner

बनकर सामने आया है। इनकी आवाज जमाने की आवाज है। अब उसे अनसुना नहीं किया जा सकता है।''[7] यह 21वीं सदी को विमर्शों की सदी कहें तो गलत न होगा। जिसमें आदिवासी विमर्श की गूँज स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगी। भारत भले ही समृद्ध विकासशील देश की श्रेणी में शामिल हैं, लेकिन आदिवासी अब भी समाज की मुख्यधारा से कटे नजर आते हैं। आज भी आदिवासी अपने ही देश में हाशिये पर स्थित है। रोज केरकेट्ट ने इन्हीं हाशिये पर स्थित आदिवासियों को अपनी रचनाओं के केन्द्र में लाने का प्रयास किया है। जिसमें उन्होंने विकास के नाम पर सरकारी तंत्र द्वारा किया गया उनका शोषण, आदिवासी समाज की गरीबी–लाचारी, उनके विडम्बनापूर्ण जीवन आदि को अभिव्यक्त किया है। इस संदर्भ में प्रो. यादव बड़ी निर्भीकता के हिंदी आदिवासी आलोचना को सवालों के घेरे में खड़ा करते हैं। वे लिखते हैं कि, ''आज एक ओर जहाँ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अपा जाप किया जा रहा है और दूसरी ओर आर्थिक उदारीकरण का स्तुतिगान करते हुए सर्वधर्म समभाव की संभावना तलाशी जा रही है तो ऐसे में बहुसंख्यक आबादी वाले हाशिए की समाज की राष्ट्रीयता क्या होगी? दलितों, आदिवासियों, स्त्रियों, किसानों, मजदूरों व अन्य बहिष्कृत जाति समुदायों की उपेक्षा कर क्या किसी राष्ट्रवाद की कल्पना की जा सकती है? जिसे हाशिए का समाज कहा जाता है, बहुसंख्यक आबादी वाला वही समाज मुख्यधारा का समाज है, जिसे शैक्षिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित कर हाशिए पर फेंक दिया गया है। यही समाज देश के उत्पादन और आर्थिक विकास का मूल आधार है। ये तमाम सवाल हैं, जिनसे टकराए बिना न किसी राष्ट्रवाद की पुनर्व्याख्या की जा सकती है, न भारतीय नवजागरण की कोई मुकम्मल तस्वीर बन सकती है। अस्मिताओं के आन्दोलन इन तमाम प्रश्नों से जूझते दिखाई देते हैं। अतः खंडित विमर्श मानकर दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श और पसमांदा विमर्श की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि ये आधे–अधूरे नवजागरण को पूर्णता प्रदान करनेवाले विमर्श हैं तथा दलित मुक्ति, स्त्री मुक्ति और आदिवासी मुक्ति के सवाल ही मानव मुक्ति के प्रवेश द्वार हैं।''[8]

संदर्भ ग्रंथ

1. कमलेश्वर, आज का यथार्थ, सारिका, अक्टूबर 1974, पृ. सं. 9
2. http:/www. mohallalive.com/2011/04/26 release-function-report-

Scanned by CamScanner

of-rose kerkett-s-stary- collection/

3. https://bahujansahitya wordpress.com/20m/05/26/ difference-bitween-dalit-and-adivasi-litrature.
4. रोज केरकेट्टा, बिरुआर गमछा तथा अन्य कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. सं. 14
5. उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, डॉ. सुधीर पचौरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
6. रोज केरकेट्टा, बिरुआर गमछा तथा अन्य कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. सं. 19
7. यादव, चौथीराम, उत्तरशती के विमर्श और हाशिये का समाज, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स ;प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, 2014, पृ. सं. 9
8. वही, पृ. सं. 13

Scanned by CamScanner